"कबीर की भक्ति भावना"

भक्तिकाल की निर्गुण काव्य-धारा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास का जन्म 1398 ई० में और निधन 1518 ई० में हुआ था। इनका आविर्भाव एक ऐसे समय में हुआ, जब भारत की सांस्कृतिक अवस्था अत्यन्त दयनीय थी। जीवन और समाज में सर्वत्र बाह्याडम्बर एवं अन्धविश्वास व्याप्त था, ऐसे समय में संत कबीर ने नाथ पन्थियों की हठयोग साधना में 'भक्ति भावना' का समावेश कर उसकी नीरसता को सरसता में परिवर्तित कर दिया। संत कबीर रामानन्द के शिष्य थे तथा वैष्णवों के प्रति आदरभाव रखते थे। भक्ति भावना के लिए द्वैत आवश्यक है, जो सगुणोपासना में ही सम्भव है क्योंकि निर्गुणोपासक तो आत्मा और परमात्मा के अद्वैत पर अधिक बल देते हैं। इसलिए कबीर की भक्ति भावना सूर-तुलसीदास जैसी नहीं है। कबीर यह स्वीकार करते हैं कि भवसागर से पार जाने का साधन भक्ति है। इस भक्ति के अभाव में ही मानव 'भव-जल' में डूबता है —

"भगति बिन बौंजलिं डूबत है रे।"

संसार रूपी सागर से पार जाने के लिए भक्ति भाव ही जहाज है, जिसके खेवनहार (मल्लाह) सद्गुरु हैं। भक्ति से भव सागर को सुगमता से पार किया जा सकता है। कबीर की भक्ति भावना का विवेचन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है —

(1) <u>नामस्मरण</u> — भक्तों ने प्रभु नाम स्मरण की महत्ता का प्रायः गुणगान किया है। कबीर ने भी 'रामनाम' की महिमा का बखान किया है। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि मेरे लिए तो

'नाम' ही खेती-बारी है, नाम ही मेरी धन सम्पत्ति है, नाम जप ही मेरी सेवा-पूजा है तथा नाम ही मेरा बन्धु-बान्धव है, यथा-

"नांउ मेरी खेती नांउ मेरी बारी।
भगति करौं जन सरनि तुम्हारी॥
नांउ मेरे माया नांउ मेरी पूंजी।
तुमहिं छांड़ि जानौं नहिं दूजी॥
नांउ मेरे सेवा नांउ मेरे पूजा।
तुम्ह बिन और न जानौं दूजा॥"

कबीर का मानना है कि एकाग्रचित होकर जब ईश्वर के नाम का जप किया जाता है तभी वह फलदायी होता है। वे ऐसे नामस्मरण का विरोध करते हैं, जिसमें मन दसों दिशाओं में घूमता रहता है।

(ii) आचरण की शुद्धता — कबीर की भक्ति भावना में सदाचरण पर बल दिया गया है। वे सदाचार को भक्ति का प्रमुख अंग स्वीकारते हैं। आचरण की शुद्धता के लिए व्यक्ति को सम्पूर्ण विकारों का परित्याग करना होगा। विकारों के जनक हैं- कंचन और कामिनी - इनके त्याग से ही सदाचार का मार्ग प्रशस्त होता है। कबीर कहते हैं कि नारी के कारण ही व्यक्ति भक्ति, मुक्ति एवं ज्ञान में प्रवेश नहीं कर पाता —

"नारि नसावै तीनि सुख जा नर पासै होय।
भगति मुकति निज ज्ञान में पैसि न सकई कोय॥"

कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंग का त्याग करने एवं सत्संग करने पर बल दिया है। कबीर का मत है कि जब तक मन में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या-द्वेष आदि विकार भरे हैं तब तक हृदय में ईश्वर की भक्ति नहीं

भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

आ सकती। भक्ति मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को अहंकार एवं कपट को भी परित्याग करना पड़ता है। जब तक अहंकार है, तब तक परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती है —

"जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नांहि।
सब अंधियारा मिटि गया, दीपक देख्या मांहि ॥"

(iii) प्रपत्ति भाव — 'प्रपत्ति' का अर्थ होता है - शरणागति एवं आत्मनिवेदन। कबीरदास ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानकर उसकी शरण में जाकर अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हैं —

"कबीर तेरी सरनि आया, राखि लेहु भगवान।"

कबीर का मानना है कि मृत्यु का भय भी परमात्मा की शरण में जाने पर छूट जाता है।

(iv) परमात्मा में विश्वास — श्रद्धा और विश्वास भक्ति के अनिवार्य तत्व हैं। कबीरदास को पूरा विश्वास है कि परमात्मा पूर्ण समर्थ है। वह राई को पर्वत एवं पर्वत को राई करने की सामर्थ्य रखता है। कबीर यह स्वीकारते हैं कि मनुष्य परमात्मा की कृपा से ही कुछ कर सकने योग्य बनता है। कबीर को 'कबीर' बनाने वाला भी वही है —

"ना किछु किया न करि सक्या, ना करणें जोग सरीर।
जे किछु किया सो हरि किया, ताथैं भया कबीर कबीर॥"

कबीर का परमात्मा में यह विश्वास उनकी भक्ति का एक प्रमुख अंग है।

(v) वैराग्य भावना — 'वैराग्य' का तात्पर्य संसार को छोड़कर जंगल में निवास करना नहीं है। संसार में रहते हुए मन में संतोष वृत्ति लाना, विषय भोगों के प्रति अनासक्त होना, आशा-तृष्णा से मुक्त होना ही वैराग्य है। जब भक्त भगवान की ओर उन्मुख हो जाता है, तो

सांसारिक विषयों के प्रति विरक्ति स्वतः जाग्रत हो जाती है। कबीर की मान्यता है कि आशा और तृष्णा जन्म-जन्मान्तर तक पीछा करती रहती है —

"माया मरी न मन मुआ मरि-मरि जात सरीर।
आसा तिस्ना ना मरी सो कहि गए दास कबीर॥"

कबीर संसार के रिश्ते-नाते को क्षण भंगुर मानते हैं। ये सारे सम्बन्ध स्वार्थमय हैं, ऐसा कहकर कबीर वैराग्य जगाने का प्रयास करते हैं —

"काकी माता पिता कहु काकों कौन पुरुष की जोई।
घट फूटै कोउ बात न पूछै काढ़ु काढ़ु होई॥"

(vi) माधुर्य भाव की भक्ति — माधुर्य भाव की भक्ति को मधुरा भक्ति या प्रेम लक्षणा भक्ति कहा जाता है। भक्त स्वयं को जीवात्मा एवं ईश्वर को परमात्मा मानकर दाम्पत्य प्रेम की अभिव्यक्ति जहाँ करता है वहाँ मधुरा भक्ति मानी जाती है। जीवात्मा परमात्मा के विरह का अनुभव करती हुई उससे मिलन की आकांक्षा करती है। कबीर की आत्मा रूपी सुन्दरी बार-बार 'हरि' को अपना 'प्रियतम' मानती हुई कहती है कि 'हरि' के बिना मैं रह नहीं सकती —

"हरि मेरा पीव, हरि मेरा पीव।
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव॥"

आत्मा का जीवात्मा के प्रति विरह भाव कबीर ने बड़े मनोयोग से व्यक्त किया है। प्रियतम परमात्मा की बाट जोहते-जोहते आँखों में झांई पड़ गई, राम को पुकारते हुए जीभ में छाला पड़ गया —

"अँखड़ियां झांई पड़ी पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियां छाला पड़या राम पुकारि पुकारि॥"

(vii) दास्य भाव की भक्ति — जिस प्रकार तुलसीदास की भक्ति दास्य भाव

की है, उसी प्रकार कबीरदास की भक्ति भावना में भी दास्य भाव दिखाई पड़ता है। वे प्रभु को स्वामी एवं स्वयं को 'दास', सेवक या गुलाम कहते हैं —

"मैं गुलाम मोहि बेचि गोसाईं।"

कबीर भले ही निर्गुण मार्गी सन्त कवि हो, किन्तु उनमें दास्य भाव की भक्ति दिखाई देती है —

"दास कबीर भजि सारंग पान, देहु अभय पद मांगो दान।"

कबीर के राम अनादि, अनन्त हैं, त्रिगुणातीत हैं, सत्य स्वरूप हैं। वे न जन्म लेते हैं, न मृत्यु को प्राप्त होते हैं। वे अविनाशी एवं पूर्ण हैं। योगी उन्हें योग से पाते हैं, तो भक्त उन्हें भक्ति से प्राप्त करते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि कबीर के राम एक ओर तो सगुण राम (दशरथ पुत्र) से भिन्न हैं, तो दूसरी ओर शंकराचार्य के निर्गुण ब्रह्म से भी अलग हैं, क्योंकि वे ज्ञान के नहीं भक्ति के विषय हैं। जीवात्मा प्रियतम राम के प्रति अनुरक्त होकर ऐसी पागल हो गई है कि उसे लोक-लाज का भी भय नहीं है —

"मैं बौरी मेरे राम भरतार।
ता कारनि रचि करौं सिंगार॥"

कबीर ने निर्गुण, निराकार, अजन्मा, अरूप, अलख ब्रह्म को ही 'राम' के नाम से सम्बोधित किया है। कबीर भले ही निर्गुण सन्त कवि हैं, किन्तु उनमें भक्ति तत्व की प्रधानता है। वह भक्ति जो सगुण-साकार रूप से सम्बद्ध होती है, उसे निर्गुण निराकार ब्रह्म के प्रति उतनी ही तीव्रता से व्यंजित कर कबीर ने निर्गुण भक्ति का एक आदर्श प्रस्तुत किया है। वे यह स्वीकार करते हैं कि —

"जब लगि भाव भगति नहिं करिहौं।
तब लगि भवसागर क्यू तरिहौं॥"

कबीर अपना सर्वस्व परमात्मा के प्रति समर्पित करते हुए कामनाहीन हो जाते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर एक सच्चे भक्त थे। वे भक्ति की महिमा गाते नहीं अघाते थे। भक्तिहीन जीवन को वे व्यर्थ बताते हैं। वे मनुष्यों को समझाते हैं कि अभी समय है, इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हुई हैं। अतः भक्ति कर लो क्योंकि जब अन्त समय आएगा तब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाएँगी और भक्ति नहीं हो पाएगी। निश्चय ही कबीर एक उच्च कोटि के भक्त थे। परमात्मा के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास उनकी भक्ति भावना का प्रमुख तत्व माना जा सकता है।

डॉ० राकेश कुमार
हिन्दी विभाग
श्रीगोद महाविद्यालय, साराराम, रोहतास